

दिनकर जी ने मेरी कविताओं को सुना तो बुलाकार पीठ ठेंक उत्साह बढ़ाया। उस दौर के कवियों के पास सुन्दर शब्द संयोजन था, छंदों का अनुशासन, परम्पराओं और शास्त्रीय विधानों के प्रति निष्ठा थी। कला के प्रति गहरी निष्ठा थी। आज की पीढ़ी को गहरे उतरने का अवसर ही नहीं मिलता। कला-पक्ष के प्रति कोई आग्रह नहीं है, न ही धैर्य। सब कुछ 'इन्स्टेंट' चाहते हैं। इस प्रवृत्ति के मूल में आज का व्यस्त वातावरण है। इसमें दोष नई पीढ़ी का भी नहीं है। आज सबके पास समय की कमी है।

आपके गीत संवेदना के बेहद कोमल तंतुओं को झनझनाते हैं तो गजलें जीवन मूल्यों की पुरजोर वकालत करती हैं। सर्जना के स्तर पर आप इन दोनों में संतुलन कैसे स्थापित करते हैं?

संतुलन का कोई प्रश्न ही पैदा नहीं होता। यथार्थ से मुठभेड़ से मिलने वाले जीवन के अनुभव संवेदना के रस से सिक्त हो शब्दों के ताने-बाने से जो वस्त्र बुनते हैं, वे गीत भी होते हैं और गजल भी। जीवन-मूल्य तो गीतों और गजलों में भी आते हैं।

तुम्हारे दिल की चुभन भी जरूर कम होगी।

किसी के पांव से कांटा निकाल कर देखो

हां, एक बात जरूर है। गीत काफ़ी एकाग्रता और लम्बे भावभूमि विचरण की मांग करते हैं। गेयता तो होती ही है कथ्य की तारतम्यता भी होती है। गजल में पांच-सात शेर में बात खत्म। एक गजल में कथ्यों की विविधता लिए हुए अलग-अलग शेर भी हो सकते हैं। तो यह सृजन-वैभिन्न्य अपने आप निभ जाता है। मेरी एक गजल का शेर देखिए-

तब गजल में प्यार के ही काफ़ियों का जोर था

अब गजल में प्यार का ही काफ़िया बीमार है।

क्या आपको लगता है कि हिन्दी गजलों के समाज-सापेक्ष स्वरूप ने उर्दू की गजलों के स्वरूप को प्रभावित किया? यदि हां तो कहां तक और कैसे?

बेशक। उर्दू गजलों के कथ्य एक सीमित परिधि में थे। या वे कथ्य की दृष्टि

से कुछ बाहर भी आए तो पुराने प्रतीकों से बाहर नहीं आ सके। इसके विपरीत दुष्यंत ने ऐसी गजलें कहीं जिससे गजल का मिजाज़ ही बदल गया। यही नहीं, दुष्यंत कुमार से पहले हिन्दी साहित्य के कई नामचीन साहित्यकारों ने भी हिन्दी में गजलें लिखी मगर दुष्यंत कुमार ने अपने परिवेश के प्रतीकों को उठाकर समकालीन चुनौतियों को अपना कथ्य बनाया। हिन्दी गजलों को मुख्यधारा में लाने का श्रेय उन्हें ही जाता है। अपने तत्कालीन समाज की विसंगतियों, विषमताओं, आक्रोश, को उन्होंने अपनी



गजलों का कथ्य बनाया। परेशान समाज को एक स्वर मिल गया, एक मंच मिल गया।

हिन्दी गजलों की बढ़ती लोकप्रियता ने उर्दू गजलों को भी एक व्यापक फलक दिया। गजलों के कथ्य ने भी करवट बदली। पहले के कवि और शायरों में से अधिकतर राज्याश्रय में होते थे। राजाओं, बादशाहों को खुश करना उनका अभीष्ट था। इसलिए राजकीय/ दरबारी परिवेश के बिम्ब, प्रतीक आदि का प्रयोग हुआ। इश्क, शराब, पैमाना, सागर, मयखाने आदि प्रतीक हुआ करते थे।

कालान्तर में शायरों, कवियों का संपर्क आम जनता उनके दुख-दर्द, यथार्थ से बढ़ने लगा तो प्रतीकों का आज का सामाजिक पाखंड, विषमता, जीवन-मूल्यों के हास आदि विषय गजलों में भी

आने लगा। वे भी मीना, पैमाना, जाम, शराब, चिराग, महताब, आफताब से ऊपर उठकर कहने लगे। मेरा ही एक शेर देखें-

होके मायूस न यूँ शाम-से ढलते रहिये

जिन्दगी भोर है सूरज से निकलते रहिये।

एक प्रासंगिक प्रश्न - हिन्दी के शीर्ष आलोचक गजलों का विरोध क्यों करते हैं।

सामान्यतः समालोचना के शिखर पुरुषों ने शायद गजल विधा की ओर

झांकने की जहमत ही नहीं उठाई, विचार योग्य ही नहीं समझा जब कि दुष्यंत कुमार सरीखे लोगों ने गजल को भी हिन्दी साहित्य में एक सशक्त विधा के रूप में स्थापित कर दिया। ये समालोचक गजल जैसी गेय कविता को चर्चा के योग्य ही नहीं मानते। बस, यही अन्तर है।

हिन्दी गीत और गजल को व्यापक स्वीकार्यता के लिए किस तरह के संघर्षों का सामना करना पड़ रहा है?

मैंने पहले भी कहा है कि चूंकि हिन्दी गीत और गजल समकालीन संदर्भों को स्वयं में समाविष्ट करते रहे हैं, उनका शब्द-भंडार प्रचुर रहा है, गेयता का परिसर भी व्यापक रहा है। अतः संघर्ष वाली बात नहीं है। हां, नई कविता ने थोड़ी बाधा जरूर डाली परन्तु जीत तो गीतों की हुई। दुष्यंत कुमार ने यह संघर्ष